B.A Part II
15/05/2020

Indian Logic
paper III

September 2007

Pratyaksa Pramana'
(प्रत्यक्ष प्रमाण)

Dr. Anita Kumari Gupta.
J.K. College Biraul.

29 Sat

न्याय दर्शन में प्रत्यक्ष प्रमाण का लक्षण उपस्थित करते हुए सूत्रकार ने लिखा है

'इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मक प्रत्यक्षम्।' अर्थात इन्द्रिय और पदार्थ के सन्निकर्ष (संयोग) से जो अव्यपदेश्य अर्थात अकथनीय, अव्यभिचारि अर्थात संशय विपर्ययादि दोषों से रहित, व्यवसायात्मक ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे प्रत्यक्ष कहते हैं।

प्राचीन न्याय के अनुसार प्रत्यक्ष एक था और नव्य न्याय में प्रत्यक्ष के दो रूप हो गए। एक निर्विकल्पक और दूसरा सविकल्प।

प्रत्यक्ष के लक्षण

(i) गंगेश ने प्रत्यक्ष का लक्षण 'साक्षात्कारित्व'

30 Sun

बताया। 'साक्षात्कारिणी प्रमा के करण' का नाम प्रत्यक्ष है।

(ii) जिस ज्ञान का कारण कोई अन्य ज्ञान न हो उसे प्रत्यक्ष कहते हैं।

(iii) न्यायसूत्र के भाष्यकार वात्स्यायन ने सूत्रस्थ 'सन्निकर्ष' शब्द का अर्थ संयोग ही लेकर चलता कर दिया था किन्तु सन्निकर्ष छः प्रकार के माने गये जो निम्नलिखित हैं :-

(i) संयोग - जब हम आँख से सामने स्थित घर को देखकर उसका ज्ञान-अर्जन करते हैं तब चक्षु इन्द्रिय और घट अर्थ का सन्निकर्ष संयोग कहलाता है। इसी प्रकार जब अन्तरिन्द्रिय मन से आत्म-विषयक ज्ञान उत्पन्न होता है तो इस सन्निकर्ष को भी मन (इन्द्रिय) और आत्मा का संयोग ही कहा जाएगा।

October 2007
M	T	W	T	F	S	S
1	2	3	4	5	6	7
8	9	10	11	12	13	14
15	16	17	18	19	20	21
22	23	24	25	26	27	28

Scanned by CamScanner

1 Mon

(2) संयुक्त समवाय :- जब हम प्रत्यक्षीकृत पदार्थ के गुणों का ज्ञान करते हैं तो हमारी इन्द्रिय का संयोग उन गुणों से होता है जो उस द्रव्य द्रव्य में समवाय संबंध में रहते हैं। इसी संयोग का नाम 'संयुक्तसमवाय' सन्निकर्ष है। उदाहरण के लिए हमने बजाज की दुकान पर जाकर कपड़ा देखा। वह कपड़ा लाल था। यहां पर हमारी चक्षु इन्द्रिय वस्त्र के गुण लालिमा से संयुक्त होती है और वह लालिमा वस्त्र में समवाय संबंध से रहती है। चक्षु और लालिमा के इस संयोग को संयुक्त समवाय इसलिए कहते हैं कि हमारी इन्द्रिय चक्षु प्रत्येक उस गुण से संयुक्त होती है जो कि उस द्रव्य में समवाय संबंध से रहता है।

2 Tue

(3) संयुक्तसमवेतसमवाय - जब प्रत्यक्ष के विषयीभूत द्रव्य के किसी गुण में समवाय संबंध में रहने वाली जाति आदि का ज्ञान होता है तब हमारे इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष को 'संयुक्तसमवेतसमवाय' कहते हैं। तात्पर्य यह है कि इन्द्रिय से संयुक्त हुए द्रव्य में समवाय संबंध से रहने वाले गुणादिक में समवाय संबंध से रहने वाले के ज्ञान की प्रक्रिया का नाम ही 'संयुक्त समवेत समवाय' है। उदाहरण के लिए जब पटगत नील पीतादि के ज्ञान के अनन्तर नील की जाति नीलत्वादि का ज्ञान उद्भूत होता है तो वहां 'संयुक्तसमवेत समवाय सन्निकर्ष'

M	T	W	T	F	S	S
					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28	29	30

September 2007

होता है क्योंकि चक्षु इन्द्रिय से संयुक्त पट में

3 Wed

समवेत अर्थात् समवाय संबंध से रहने वाले रूप-रंग होते हैं जिनमें सामान्य या जाति (नीलत्व) सामान्य संबंध में रहती है।

(4.) समवाय - श्रोत्रेन्द्रिय का शब्द रूपी अर्थ के साथ जो संयोग होता है, वह 'समवाय' सन्निकर्ष कहलाता है। अन्य इन्द्रियाँ तो तत्त्व भूतों की विकार रूप हैं परन्तु श्रोत अपने कारण आकाश का विकार न होकर आकाश रूप ही माना जाता है। शब्द आकाश का गुण है। अतः जब श्रोत का शब्द से संयोग होता है तो वह संयोग श्रोतआकाश में समवाय संबंध से रहने वाले ही से होता है। इसलिए इस सन्निकर्ष का नाम 'समवाय' है।

4 Thu

(5) समवेत समवाय - समवेत अर्थात समवाय संबंध से रहने वाले में 'समवाय' अर्थात समवाय संबंध से रहने वाले के ज्ञान-अर्जन में 'समवेत-समवाय' सन्निकर्ष होता है। शब्द में जब शब्दत्व जाति का ज्ञान उद्भूत होता है तो वहाँ 'समवेत समवाय' सन्निकर्ष होता है। श्रोत्रेन्द्रिय (आकाश) का उसमें 'समवाय' संबंध से रहने वाले शब्द का संयोग होता है और तद्भूत शब्दत्वादि जाति, जो उसमें 'समवाय' संबंध से रहती है का ज्ञान न्याय में 'समवेत समवाय' द्वारा ही माना जाता है।

(6) विशेषणविशेष्यभाव - समवाय और अभाव के प्रत्यक्षीकरण के 'विशेषणविशेष्यभाव' सन्निकर्ष

M	T	W	T	F	S	S
			1	2	3	4
5	6	7	8	9	10	11
12	13	14	15	16	17	18
19	20	21	22	23	24	25
26	27	28	29	30		

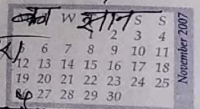

November 2007

Scanned by CamScanner

की कल्पना की गयी है। यह विशेषण विशेष्य भाव उपरिलिखित पाँच प्रकार के सन्निकर्षों में से ये

5 Fri

किसी से सम्बद्ध होता है। इन सन्निकर्षों में से किसी भी सन्निकर्ष के द्वारा उत्पन्न ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं। परन्तु यह ज्ञान यथार्थ होना चाहिए, इसीलिए सूत्रकार ने उसे 'अव्यभिचारी' और 'व्यवसायात्मक' कहा था। नैयायिक लोग इसी प्रकार के ज्ञान को 'प्रमा' कहते हैं। यथार्थ अनुभव ज्ञान का नाम ही 'प्रमा' है। संशय, विपर्यय और तर्क ज्ञान से भिन्न नाम को ही यथार्थानुभव अथवा प्रमा कहते हैं। सूर्य की किरणों के प्रकाश से चमचमाती हुई शक्ति में रजत की प्रतीति अथवा मृगमरीचि में जल का आभास यथार्थानुभव न होने से 'प्रमा' नहीं कहलाते हैं।

6 Sat